



अथ

श्रीमदलौकिकवेदान्तस्तोत्रसमुच्चयः

(संस्कृतभाषायां प्राकृतभाषायाञ्च)

श्री १०८ स्वामी निरञ्जनदेव सरस्वती

विरचित

जिसको

श्रीमान् सेठ अमृतलालात्मज, श्रीमान् हरिभक्त
सेठ गिरिधरलाल अहमदाबाद निवासी ने
लोकोपकारार्थ प्रकाशित किया ।



मुद्रक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

१९२४



अथ

श्रीमदलौकिकवेदान्तस्तोत्रसमुच्चयः

(संस्कृतभाषायां प्राकृतभाषायाञ्च)



श्री १०८ स्वामी निरञ्जनदेव सरस्वती

विरचित

जिसको

श्रीमान् सेठ अमृतलालात्मज, श्रीमान् हरिभक्त सेठ गिरिधरलाल
अहमदाबाद निवासी ने लोकोपकारार्थ प्रकाशित किया ।



मुद्रक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

१९२४

Printed by K. Mittra, at The Indian Press,
Ltd., Allahabad.

[हरिः ओ३म् तत्सत्]

[अथ श्रीमदलौकिकवेदान्तस्तोत्र-समुच्चयः संस्कृतभाषायाम्]

तत्रादौ–

॥ श्रीनिरञ्जनाष्टकं प्रारम्भते ॥

मङ्गलाचरणम्

(दोहा)

कारण कारज वरग को, हों कारण चिद् एव ।
केवल जो आनन्दमय, सोई निरञ्जन देव ॥ १ ॥

[मूल श्लोक]

स्थानं न मानं न च सादविन्दुम् ।
रूपं न रेखा न च धातुरन्यः ॥

दृष्टा न दृष्टं श्रवणं न श्राव्यम् ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ १ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया छन्द]

परिमाण नहीं कहिँ धाम नहीं,
जिसको मिल शब्द न भान करें ।
वह रूप नहीं अरु रेख नहीं,
इमि धातु अनेक न नाम धरैं ॥
अवलोकन योग न देखत ही,
न सुनें न सुनावन काम करैं ।
तिहिं ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ १ ॥

[मूल श्लोक]

वृक्षो न मूलं न च बीजपुष्पम् ।
शाखा न पत्रं न च वल्लिपत्तम् ॥
पुष्पं न गन्धं न फलं न छाया ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ २ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

तरु छाँह नहीं फल फूल नहीं,
वह मूल नहीं किमि पात करैं ।
वह बीज नहीं कोउ चीज़ नहीं,
शुभ शाखन पुष्प सुगन्ध धरैं ॥
सबसे तज मेल अतीत रहे,
इमि भौतिक द्रव्य न रूप धरैं ।
तिहिं ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ २ ॥

[मूल श्लोक]

न वेदं न शास्त्रं न च शौचसंध्या ।
मन्त्रं न दाप्यं न च ध्यानध्येयम् ॥
होमं न यज्ञो न च वेदपूजा ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ३ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

निगमागम जान सकें न जिसे,
नित पूजन शौच न काम करैं ।

वह लोचन गोचर होत नहीं,
निशि वासर दे मन ध्यान धरैं ॥
कर होम सुयज्ञ अनेक रचैं,
जिसको नहिं मन्त्र विधान करैं ।
तिहिं ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिं बार प्रणाम करैं ॥ ३ ॥

[मूल श्लोक]

अधो न ऊर्ध्व न शिवो न शक्तिः ।
पुमान्न नारी न च लिङ्गमूर्त्तिः ॥
न विष्णुर्न ब्रह्मा न च देवरुद्रः ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ४ ॥

[प्रतिबिम्ब–सवैया]

धरणीतल में न अकाशहु में,
शिव शक्ति पुमान न रूप धरैं ।
प्रतिमा अरु चिह्न नहीं जिहि को,
जिहि को अबला श्रुति नेति ररैं ॥
वह विष्णु नहीं सुविरंचि नहीं,
किसको शिव मान बखान करैं ।

तिहिँ ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ ४ ॥

[मूल श्लोक]

अखण्डखण्डं न च दण्डदण्डम् ।
कालो न दिव्यं न गुरुर्न शिष्यः ॥
न ग्रहो न तारा न च मेघमाला ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ५ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

सबमें समभाव रहे जिसका,
वह शासन दण्ड विधान करैं ।
उससे उपरान्त न शासन है,
जिसको मिल काल न हान करैं ॥
गुरु शिष्य नहीं ग्रह मेघ नहीं,
मिल स्वर्ग सितार न काम करैं ।
तिहिँ ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ ५ ॥

[मूल श्लोक]

न श्वेतं न पीतं न च रक्तरेतम् ।
हेमं न रौप्यं न च वर्णवर्णम् ॥
चन्द्रार्कराहोरुदयो न चान्तं ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ६ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

वह श्वेत न पीत न रक्त कभी,
कनकादिक द्रव्य न रूप धरैं ।
रवि चन्द्र समान उदय न छिपै,
गमनागम को श्रुति नाहिँ ररैं ॥
वनवह्नि समान सो दीप्त नहीं,
बिन रूप जिसे मुनि ध्यान धरैं ।
तिहिं ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ ६ ॥

[मूल श्लोक]

स्वर्गे न पङ्क्तिर्नगरे न क्षेत्रे ।
जातेरतीतं न च भेदभिन्नम् ॥

नाहं न तु त्वं न पृथक् पृथक्ता ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ७ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

पुर धामनि वास नहीं जिसका,
जहँ जन्म न मृत्यु स्वकाम करैं ।
बस भेद विभिन्न नहीं जिसमें,
इमि तू अरु मैं नहिँ नाम धरैं ॥
सबमें सबसे पुनि दूर रहे,
असमान मुनीश्वर ध्यान धरैं ।
तिहिँ ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिँ बार प्रणाम करैं ॥ ७ ॥

[मूल श्लोक]

गम्भीरदीप्तं न निर्वाणशून्यम् ।
संसारसारं न च पापपुण्यम् ॥
व्यक्तं न चाक्तं न च भेदभिन्नम् ।
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ८ ॥

[प्रतिबिम्ब-सवैया]

वह दीप्त गम्भीर विशून्य नहीं,
ऋषिराग विहीन विधान करैं ।
सब सार कहैं भव का जिसको,
श्रुति पाप न पुण्य प्रमाण करैं ।
जहँ व्यक्त अव्यक्त की बान नहीं,
अरु भेद न भिन्न से काम परैं ।
तिहिं ब्रह्म अपार निरञ्जन को,
हम बारहिं बार प्रणाम करैं ॥ ८ ॥

(दोहा)

श्री शङ्कर कृत मूल पै, दीन्हें छन्द बनाय ।
पढ़ें सुनें जो प्रेम से, परम धाम सो पाय ॥ १ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमद्भगवच्छङ्कराचार्यविरचितं "निरञ्जनाष्टकम्"
श्रीस्वामिनिरञ्जनदेव सरस्वतिविरचितं
भाषाछन्द-प्रतिबिम्बसहितं

समाप्तम् ॥

———

ॐ

अथ श्रीगुरु अष्टक ॥

(दोहा)

अमर अनादि अनन्त अज, जग कारण प्रभु नाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥१॥

सत्ता सुफूरति देत हैं, जीव जात सुख धाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥२॥

सत् चित् आनन्द श्री हरी, साक्षी सर्व अकाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥३॥

ज्ञेय ध्येय जो वेद में, ब्रह्मविदन को धाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥४॥

माया-मय संसार सब, भगवन निर्गुण नाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥५॥

जग कारण तारण तुम्हीं, परम अनादी धाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥६॥

सर्व देव में देव हरि, वेद कहें अठ याम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥७॥

शुध बुध ज्ञान स्वरूप जो, जग साक्षी त्रय धाम।
कृष्ण निरञ्जनदेव गुरु, कोटि अनन्त प्रणाम ॥८॥

गुरु अष्टक गुरु भक्ति हित, पढ़ो प्रेम चित धार।
कहत निरञ्जनदेव यति, लूटो ज्ञान बहार ॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वती-कृत
श्री गुरु अष्टक समाप्तः ॥ ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीसत्याचाराष्टक ॥२॥

(दोहा)

उठ के ब्रह्म मुहूर्त में, सुमरो श्री भगवान।
देह यात्रा कीजिये, यथा योग असनान ॥१॥

संध्या आदिक हवन कछु, निज निज शाखा पाठ।
प्रेम सहित गीता पढ़ो, उपनिषदें शत आठ ॥२॥

वेद विहित नितकर्म जो, कर आश्रम अनुसार।
शरणागत को दीजिये, दान शक्ति सुख सार ॥३॥

ऊँच नीच नर नार सब, निर्गुण अति गुणवान ।
ब्रह्मा आदि पिपीलिका, विष्णु रूप पहचान ॥४॥

एकोऽहम् बहुस्याम वे, पुनि पुनि श्रुती विचार ।
भजो ब्रह्म सर्वातमा, राग द्वेष को डार ॥५॥

प्रेम भाव सबसे करो, कर शुध हार विहार ।
भजन ध्यान सतसंग में, निशि दिन राखो प्यार ॥६॥

धर उर दैवी संपदा, तजो आसुरी भाव ।
मात पिता हरिगुरु भगति, अपना काल बिताव ॥७॥

यह आज्ञा सब ईश की, वेद शास्त्र मुनि द्वार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, पालन करो उदार ॥८॥

अष्टक सत्याचार को, बारम्बार विचार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, आप तरो कुल तार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीकृत "सत्याचाराष्टक"

समाप्तः ॥ ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीवितस्ताष्टक ॥३॥

(दोहा)

मुनी श्रुती यश जासु का, गावत हैं अठयाम ।
नमो वितस्ता मातु को, जगतारण अभिराम ॥१

शङ्कर को प्रिय शङ्करी, शमन करे दुष्काम ।
हरे पाप रवि तिमिर ज्यों, गङ्ग वितस्ता नाम ॥२

भई प्रगट कश्मीर में, कश्यप मुनि के धाम ।
देवगणों कर सेव्य है, गङ्ग वितस्ता नाम ॥३

ज्ञान देत अघ हरत है, करे पूर्ण सब काम ।
तीरथ कोटि निवासकर, गङ्ग वितस्ता धाम ॥४

हिमगिरि शोभा देत है, चार ओर अभिराम ।
बहु भाँतिन के फूल फल, गङ्ग वितस्ता ठाम ॥५॥

मुनि गण तज के वासना, करते तप निष्काम ।
श्रुति विचार फल रूप जो, गङ्ग वितस्ता धाम ॥६॥

पावन निर्मल नीर है, मघवन अमृत धाम ।
धर्म ध्यान कर सेविये, गङ्ग वितस्ता नाम ॥७॥

सूरज-वंशी नृपन का, भयो राज निष्काम ।
कृष्ण निरञ्जनदेव हरि, गङ्ग वितस्ता धाम ॥८॥
वितस्ताष्टक कष्ट को, करे नष्ट ततकाल ।
कहत निरञ्जनदेव यति, भज प्यारे नँदलाल ॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव-सरस्वतीकृत 'श्रीवितस्ताष्टक'

समाप्तः । ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीगङ्गाष्टक ॥ ४ ॥

(दोहा)

चरण धोय विधि हरी के, श्रुतिविधिपूजन कीन ।
हरे त्रिलोकी तापजल, जान कमण्डलु लीन ॥१॥
गङ्ग उमँग तब ले चली, स्वर्ग भूमि पाताल ।
शङ्कर जटा पसार के, लीनी ताहि सँभाल ॥२॥
रघुकुल जगत उधार को, तप भागीरथ कीन ।
ले गङ्गा शिव से चले, मुनिवर गायन कीन ॥३॥

पसरो आदी पुरुष वहु, तीरथ वेद स्वरूप।
साक्षी स्वप्न समान जग, नहीं रूप अनिरूप ॥४॥

जय जय गङ्गे! ज्ञानमयि, जय देवी ब्रह्म धाम।
शङ्कर प्यारी जगत की, श्रीभागीरथि नाम ॥५॥

त्याग हिमालय सिन्धु में, गमन गङ्ग ने कीन।
मनहुँ ब्रह्मवित ब्रह्म में, त्याग वासना लीन ॥६॥

ज्ञान अकर्षण पालना, शक्ति उचाटन चार।
मोक्ष धाम दायक सदा, ब्रह्मवित मुनिआगार ॥७॥

ऊँच नीच नर नार सब, तजो वासना भोग।
कहत निरञ्जनदेव यति, करहु गङ्गतट योग॥८॥

'गङ्गा अष्टक' सेवियें, मन धर सत्य विचार।
कहत निरञ्जनदेव यति, उतरो भव निधि पार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित गङ्गाष्टक

समाप्तः। ओं शान्तिः ३॥

अथ श्रीजगन्नाथाष्टक ॥ ५ ॥

(दोहा)

जगन्नाथ जगदेव इक, सर्व जगत भरपूर ।
सत चित आनँद आतमा, सोऽहम् सदा हजूर ॥१॥

जिहि के सुमिरन ध्यान ते, मिटे अविद्या शूल ।
तीन धाम साची सदा, सोऽहम् मङ्गल मूल ॥२॥

कारण कारज वरग जो, जामें सदा अभाव ।
परब्रह्म अज आत्मा, सोऽहम् सहज सुभाव ॥३॥

भजें शेष श्रुति शारदा, नहिं पावत कोउ पार ।
कृष्ण निरञ्जनदेव यति, सोऽहम् ब्रह्म उदार ॥४॥

देह दिवालय पुरी में, जगन्नाथ करतार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, सोऽहम् भजो उदार ॥५॥

ज्ञानसिन्धु के तट्ट पर, अनुभव सुन्दर धाम ।
सोऽहम् भाव कर पूजिये, जगन्नाथ अभिराम ॥६॥

ब्रह्म भास जग जीव सब, सिन्धु ज्ञान कलोल ।
सोऽहम् डुबकी लेत वर, ज्ञानसिन्धु की झोल ॥७॥

पूजन सिन्धु दरशकर, जगन्नाथ अभिराम ।
ब्रह्म निरञ्जन ध्यान रति, सोऽहम् मुक्ती काम ॥८॥

अष्टक वर जगदीश का, पढ़ो सुनो चित धार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, भासे आतम सार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीजगन्नाथाष्टक ।

समाप्तः । ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

अथ श्रीनामाष्टक ॥६॥

(दोहा)

हे गोविन्द मुकुन्द प्रभु, हरे कृष्ण जगदेव ।
परमानन्द आनन्दमय, ब्रह्म वित जाने भेव ॥१॥

राम रमापति रम रहो, जग जिमि पय नवनीत ।
यती निरञ्जनदेव गुरु, कृष्णचन्द्र हरि मीत ॥२॥

वारम्वार उच्चारिये, कृष्ण निरञ्जन नाम ।
नाम दाम नहि लगत हैं, भजो कृष्ण हरि राम ॥३॥

राम राम भज हे सखा !, कृष्ण कृष्ण घनश्याम ।
देवन देव निरञ्जना, सुमिरो आठों याम ॥४॥

हे माधव मधुसूदना, सदा रहो अनुकूल ।
यती निरञ्जनदेव को, प्यारे ! अब मत भूल ॥५॥

कृष्ण आदि मध्यान्त हैं, कृष्ण पूज्य त्रय लोक ।
यती निरञ्जनदेव का, परम रूप अवलोक ॥६॥

नाम निरञ्जन ब्रह्म का, भजो तजो जग काम ।
हरे कृष्ण हे राम कह, राम राम सुखधाम ॥७॥

षट ज्योतिन में ज्योति जो, कृष्ण आतमा राम ।
यती निरञ्जनदेव का, रूप नाम अभिराम ॥८॥

अष्टक नाम विचार के, जो कोउ सुमिरे राम ।
कहत निरञ्जनदेव यति, मिलें कृष्ण अभिराम ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित नामाष्टक

समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीदानाष्टक ॥ ७ ॥

(दोहा)

श्री मुख श्रुति करि भाषयो, दान परम सुख खान।
भोग स्वर्ग अपवर्ग सव, दान विना नहिं मान ॥१॥

दियो दान सन्मान से, गो ब्राह्मण हित जान।
जनक राम इतिहास में, हरिचँद नृप का भान ॥२॥

दान शील वलवान जग, वली भयो मतिमान।
विष्णुदेव रक्षा करें, धर्म काज भगवान ॥३॥

तन मन धन अरपो भले, करके अति सन्मान।
यती निरञ्जनदेव यश, वेद मुनीश्वर गान ॥४॥

दानवान त्रयलोक में, तेजवान अति जान।
ऐसी विधि मुनियन कही, दान समान न आन ॥५॥

दानवान के धाम पर, आवत तपी महान।
कहत निरञ्जनदेव यति, यथा शक्ति कर दान ॥६॥

अन्न दान सम दान नहिं, अन्न दानवर ज़ान।
निरञ्जन विद्या दान पुनि, मुनि 'मनु' कीन विधान ॥७॥

धन उपारजन कीजिये, सत वृति से मतिमान।
सोइ दान के योग्य हैं, निरञ्जन कह भगवान ॥८॥
अष्टक दान विचार के, पढ़ नित मीत हमार।
कहत निरञ्जनदेव यति, उभय लोक सुखसार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीदानाष्टक समाप्तः।

ॐ० शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीधर्माष्टक ॥ ८ ॥

(दोहा)

वेद शास्त्र में मुनिवर, भाख्यो धर्म प्रधान।
सबका धारक श्री हरी, धर्म रूप परमान ॥१॥
वर्णाश्रम प्रभु ने रचे, गुण करमों अनुसार।
पालो निज निज धर्म को, श्री मुख श्रुती पुकार ॥२॥
पारस परम पिछानिये, अपना धर्म उदार।
चार पदारथ देत हैं, श्रुती संत निरधार ॥३॥

देह इन्द्रियाँ भिन्न हैं, भिन्नहिं धर्म विचार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, असङ्ग आतमा सार ॥४॥

लौकिक वैदिक धर्म जो, भूपति परजा जान ।
ऋग्गवेद में श्री हरी, धर्म कीन सब गान ॥५॥

धर्म मातु पितु गुरुन के, दम्पति धर्म विधान ।
कालदेश युग धर्म जो, मुनियन कीन प्रमान ॥६॥

होय न्यूनता धर्म की, करे नृप अत्याचार ।
परम कृपालु श्री हरी, प्रगटें कृष्ण मुरार ॥७॥

गो ब्राह्मण अरु साधुहित, धरम स्थापन काज ।
अलौकिक विग्रह धारके, आवत हैं महाराज ॥८॥

अष्टक धर्म विचार के, पालो धर्म सुजान ।
कहत निरञ्जनदेव यति, कृपा करें भगवान ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीधर्माष्टक

समाप्तः ३० । ३० ।। ३० ।।।

अथ श्रीभक्तिअष्टक ॥ ८ ॥

(दोहा)

शुद्ध भक्ति पितु मातु की, हरिगुरु भक्ति प्रमान।
भक्तिसाधु अरु विप्र की, श्रुति मुनि कीन विधान ॥१॥

भक्ति भाव ते गुरु मिले, मिले गुरु ते ज्ञान।
मोक्ष होत है ज्ञान ते, गावत वेद पुरान ॥२॥

भक्ति करी प्रह्लाद ने, द्रौपदि औ ध्रुव जान।
भक्ति प्यारी श्याम को, गोपसुता परमान ॥३॥

भक्ति छाँड़ संसार में, करे साधना आन।
कहत निरञ्जनदेव यति, सो सब फीके जान ॥४॥

भक्ती साधन ज्ञान का, कीनों श्रुती विधान।
वार वार श्रीमुख कहो, कृपासिन्धु भगवान ॥५॥

भक्ती प्यारी कृष्ण को, श्रुत धर सुनों सुजान।
प्रेम भक्ति आधीन हैं, श्रीकृष्ण जिय जान ॥६॥

भक्ती में गुण बहुत लख, शुक सनकादिक गान।
कहत निरञ्जनदेव यति, भजो कृष्ण मतिमान ॥७॥

भक्ति सार इमि श्रुति ररैं, आतम अनुसंधान।
ब्रह्म आत्म शुध ध्यान में, अरपो प्यारे प्रान ॥८॥
भक्ती अष्टक सार यह, प्रिय भक्तन के काज।
कहत निरञ्जनदेव यति, मिलें कृष्ण महाराज ॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीभक्तिअष्टक समाप्तः। ॐ शान्तिः ॥३॥

अथ श्रीप्रेमाष्टक ॥१०॥

(दोहा)

प्रेम पदारथ जगत में, दुर्लभ जानो मीत।
शुद्ध प्रेम से हरि मिले, यही सनातन रीत ॥१॥
अति आकर्षण प्रेम में, श्रुति गोपिन की रीत।
जग तारण कारण हरी, रीझे प्रेम प्रतीत ॥२॥
प्रेम पियाला पियत हैं, यह भक्तन की रीत।
यती निरञ्जनदेव जो, श्रीकृष्ण जग मीत ॥३॥

कियो प्रेम प्रह्लाद ध्रुव, प्रेम भरत की रीत।
प्रेम गजेन्दर द्रौपदी, सम धारो निज चीत॥४॥

प्रेम प्रेम सब कहत हैं, है कोउ प्रेमी मीत।
कहत निरञ्जनदेव यति, कठिन प्रेम की रीत॥५॥

प्रेम मिलावे राम को, नाशे सर्व अनीत।
कृष्ण निरञ्जनदेव यति, भजो आतमा मीत॥६॥

प्रेमी डूब्यो प्रेम में, लोक वेद तज भीत।
नाहिँन सुधि व्यवहार की, लगी कृष्ण से प्रीत॥७॥

प्रेमी प्रेम प्रभाव ते, उपजी निर्मल रीत।
द्वैतभाव सब मैंट के, भजें कृष्ण मम मीत॥८॥

प्रेमाष्टक जो कण्ठ कर, पढ़े सुने चित लाय।
कहत निरञ्जनदेव यति, तिन के कृष्ण सहाय॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीप्रेमाष्टक

समाप्तः। ॐ शान्तिः ३॥

———

अथ श्रीसत्संगमहिमाष्टक ॥ ११ ॥

(दोहा)

ब्रह्म अनादि अनन्त का, लीला जग परसङ्ग।
ताहि पेख जग भूलयो, रचयो साधू सङ्ग॥१॥

ब्रह्मनिष्ठ वर श्रोत्री, जितइन्द्रिय निरसंग।
ततक्षण ज्ञान प्रकाश हित, करिये साधू सङ्ग ॥२॥

श्रुति पुराण पुनि पुनि कहो, श्रीमुख यही प्रसङ्ग।
मोक्ष काम ऊधो ! सदा, करिये साधू सङ्ग ॥३॥

धरा धाम धन कामिनी, तजो लोक परसङ्ग।
ऊधव प्यारे देख के, करिये साधू सङ्ग ॥४॥

कह वसिष्ठ श्रीराम सुन, मोक्ष साधना अङ्ग।
ब्रह्मनिष्ठ यति पूजि के, करिये साधू सङ्ग॥५॥

साधन बहु विधि ज्ञान के, भाखे मुनि परसङ्ग।
श्रुति सिद्धान्त निर्णय कियो, है वर साधू सङ्ग॥६॥

विद्यावन्त उदार मति, नहीं द्वैत परसङ्ग।
धीर निरञ्जन ज्ञानयुत, सो प्रिय साधू सङ्ग॥७॥

श्री हरि जगत उदारहित, यतिवर रूप असङ्ग ।
पूज ब्रह्मवित प्रेम से, करिये साधू सङ्ग ॥८॥

सतसङ्गत महिमा बड़ी, को कवि करे बखान ।
वार वार श्रीमुख श्रुती, निरञ्जनदेव प्रमान ॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीसत्सङ्ग-
महिमाष्टक समाप्तः । ओं । ओं ॥ ओं ॥

अथ श्रीगौरीअष्टक ॥१२॥

अर्थात्—सतोगुण प्रधानबुद्धि

(दोहा)

गौरी धीरज उर धरो, भाख्यो श्रीभगवान ।
भजन ध्यान नित कीजिये, गुरु आज्ञा परमान ॥१॥

गौरी तज त्रय वासना, भजो आतमा राम ।
ज्ञानयोग परभाव ते, लहो ब्रह्म सुखधाम ॥२॥

गौरी ममता त्यागिये, काम क्रोध हंकार ।
पूजो हरि गुरुदेव को, त्यागो जगत असार ॥३॥

गौरी सुमरन कीजिये, निशि दिन आठों याम।
समय अमोलक जात है, भजो कृष्ण घनश्याम ॥४॥

गौरी हरि गुरु चरण में, दृढ़तर नित अनुराग।
ब्रह्म ध्यान कर प्रेम से, विषयन ते वैराग ॥५॥

गौरी बीते जन्म बहु, अब तो समझ उदार।
मिथ्या जग सुख वासना, ज्ञानअग्नि में जार ॥६॥

गौरी श्री गुरु नाथ को, सुमिरो बारम्बार।
अभय ज्ञान दाता हरी, नमो कृष्ण करतार ॥७॥

गौरी पूरब भक्ति लखि, भये प्रसन्न गुरु नाथ।
अब पुनि जगत असार ते, पकड़ि निकास्यो हाथ ॥८॥

गौरी अष्टक जो पढ़े, गुरू चरण में प्यार।
निर्मल आतमज्ञान ते, उतरे भव निधि पार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीगौरीअष्टक समाप्तः। ओं० शान्तिः ३॥

अथ श्रीज्ञानवैराग्यअष्टक ॥१३॥

(दोहा)

मायामय जग ये सभी, जैसे स्वप्न विलास ।
नृपति राज को त्याग के, भये काल के ग्रास ॥१॥

रे मन ! सुमरो कृष्ण को, तजो वासना भोग ।
आशा तृष्णा जो घनी, यही जन्म के रोग ॥२॥

मात तात अरु भ्रात नहिं, नहीं बन्धु परिवार ।
मृगजलसदृश इनहिँ लख, श्रीमुख श्रुती पुकार ॥३॥

भोग रोग जग में बली, भोग नरक का मूल ।
रे मन त्यागो भोग सब, आतम सुख में झूल ॥४॥

यह जग चञ्चल है अतिहि, गुरुमुख श्रुती विचार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, जग तज भजो मुरार ॥५॥

सत संतोष विचार कर, साधु ब्रह्मविद सङ्ग ।
कहत निरञ्जनदेव यति, त्याग भोग सर्वाङ्ग ॥६॥

निरजन देश निवास कर, श्रवणादिक दृढ़ धार ।
कृष्ण निरञ्जन ज्ञान की, लूटो खूब बहार ॥७॥

सोऽहमस्मि इहि व्रत्त को, कर सादर अभ्यास।
करे निरञ्जनदेव हिय, निर्मल ज्ञान प्रकाश॥८
अष्टक ज्ञान विराग को, पढ़ें सुनें रुचि धार।
कहत निरञ्जनदेव यति, सो जन मुक्त उदार॥९

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीज्ञानवैराग्याष्टक समाप्तः। ओ० शान्तिः॥ ३॥

अथ श्रीयोगाष्टक॥१४॥

(दोहा)

योग शास्त्र में नियम जो, कीन पतञ्जल गान
यथाक्रम्म साधन करो, भज प्यारे भगवान॥
प्राणायाम के भेद बहु, गुरु मुख लहो विचार
सिद्धासन दृढ़ धार के, करो क्रिया सुख सार॥
आपू चञ्चल हैं अतिहिं, मन चञ्चल पुनि जान
ब्रह्मचर्य दृढ़ धार के, धरो ब्रह्म का ध्यान॥३

ध्यान तुल्य नहिं सार कछु, यज्ञ तीर्थ तप दान ।
राज योग वर सेविये, निरञ्जन श्रुती विधान ॥४॥

युक्ताहार विहार कर, युक्त नींद कर मीत ।
कहत निरञ्जन देव यति, साधु ब्रह्मवित प्रीति ॥५॥

निरजन देश निवास कर, भोग लालसा त्याग ।
सत सन्तोष विचार उर, दृढ़ धारो वड़ भाग ॥६॥

इन्द्रजाल मृगनीरवत, अथवा स्वप्न समाज ।
यह रचना त्रय लोक की, भाख्यो श्रीमहाराज ॥७॥

कारण कारज जगत का, कारण ब्रह्म पिचान ।
अधिष्ठान ते भिन्न नहिं, सत्ताऽध्यस्त परमान ॥८॥

योगाष्टक निशिदिन पढ़ो, ऊँच नीच नर नार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, उतरो भव निधि पार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीयोगाष्टक

समाप्तः । ३० । ३० ॥ ३० ॥।

अथ श्रीसंन्यासाष्टक ॥१५॥

(दोहा)

ब्रह्मचर्य व्रत धार के, गुरुमुख वेदाभ्यास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥१

अथवा आश्रम क्रम्म ते, करके धर्म सुवास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥२

वेद विहित सब कर्म कर, श्रीमुख फल कहे न्यास।
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥३

श्रुति सूत्र गीता पढ़ो, श्रीमुख ज्ञान प्रकास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥४

निर्मल साधन ज्ञान के, श्रुति श्रवणादि हुलास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥५

मनो नाश च्चय वासना, पुनि पुनि तत्त्वाभ्यास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥६

साधु ब्रह्मवित सङ्ग कर, देश एकान्त निवास
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥७

ब्रह्म चिन्तवन ध्यान ते, यतिवर ब्रह्म प्रकास ।
श्रुति अनुकूल सुहावने, करो कर्म संन्यास ॥८॥
प्रथम वासना भोग तज, गुरुमुख ब्रह्म अभ्यास ।
श्रुति निरञ्जन कृष्ण जू, कहो कर्म संन्यास ॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीसंन्यासाष्टक
समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीनिर्वाणाष्टक ॥१६॥

(दोहा)

आदि अन्त मधि एक जो, पूरण श्रुती प्रमाण ।
ब्रह्म निरञ्जन एक रस, साक्षी मन अरु प्राण ॥१॥
अगम अगोचर नाम जो, पावन परम प्रमाण ।
शुद्ध बुद्ध नित ज्ञान घन, परब्रह्म निर्वाण ॥२॥
स्वयं प्रकाश स्वरूप में, निजानन्द निरमाण ।
परम पूज्य त्रय लोक में, गावत वेद पुराण ॥३॥

रूप अनादि अनन्त जो, शाश्वत एक पुराण ।
कृष्ण निरञ्जनदेव यति, पूरण पद निरवाण ॥४॥

वृत्ति ज्ञान श्रुति गम्य जो, विषयन पाँच प्रमाण ।
अनोपलब्धी रहित में, निरवाणी निरवाण ॥५॥

जाको मुनिवर ध्यान धर, गलित करे मन प्राण ।
कृष्ण निरञ्जन आत्मा, ज्ञान रूप निरवाण ॥६॥

सत्ता प्रदायक रूप मम, नहीं माप नहीं माण ।
कृष्ण निरञ्जनदेव यति, अनीरूप निर्वाण ॥७॥

कर्मोपासन योग वृत्त, श्रवणादिक परमाण ।
ब्रह्म निरञ्जनदेव यति, चिदानन्द निरवाण ॥८॥

अष्टक यह निरवाण जो, पुनि पुनि करे विचार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, सो जन मुक्त उदार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीनिर्वाणाष्टक

समाप्तः । ॐ शान्तिः ३॥

अथ श्रीस्वप्नप्रबोधाष्टक ॥१७॥

(दोहा)

माया निद्रा उभय में, जीव रहे सब सोय।
मिले मित्र गुरु ब्रह्मवित, जीव जाग्रती होय ॥१॥

को हमको संसार यह, ईश्वर श्रुती विचार।
तत्त्वमसि गुरु मुख सुनों, भेद भ्रम्म सब डार ॥२॥

निज छाया वपु भूल के, जानत बाल विताल।
हाय तात हा मात मम, ये क्या सन्मुख काल ॥३॥

तबै मातु अति प्रेम सों, देत बाल को धीर।
छाया तुमरे वपू की, त्यागो भ्रम बुधिवीर ॥४॥

माता सम हितकारिणी, श्रुती छुड़ावे भ्रम्म।
तत्त्वमसी त्वं तत्त्व असि, सत चित आनन्द ब्रह्म ॥५॥

स्वप्न ईश जग जीव गुरु, कर्म उपासन ज्ञान।
तप तीरथ सत संग लों, माया कृत पहिचान ॥६॥

मायामय परपञ्च सब, पुनि पुनि श्रुती विचार।
वर्णाश्रम स्वप्ना सभी, मात तात कुल नार ॥७॥

माया निद्रा दोष ते, ये भासत संसार
भयो ज्ञान निद्रा गई, छूटे भ्रम्म अपार ॥५
अष्टक स्वप्न प्रबोध ये, श्रुती भाव विस्तार
कहत निरञ्जनदेव यति, अहं ब्रह्म इमि धार ॥६

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीस्वप्नप्रबोधाष्

समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीकृष्णाष्टक ॥१८॥

(दोहा)

यती निरञ्जनदेव हरि, कृष्ण ब्रह्म उर धार
कृष्ण नाम वर ध्यान की, लूटो खूब बहार ॥
कृष्ण निरञ्जन एक ही, कृष्ण कृष्ण वचसार
कृष्ण कृष्ण नन्दलाल जो, कृष्ण कृष्ण करतार ॥
कृष्ण कृष्ण नित सार हैं, कृष्ण कृष्ण रुचि धा
कृष्ण कृष्ण गोपाल हरि, कृष्ण कृष्ण आधार ॥

कृष्णहि ध्यावे कृष्ण को, कृष्ण कृष्ण सुख सार ।
कृष्ण कृष्ण है वेद में, कृष्ण कृष्ण सरकार ॥४॥

कृष्ण कृष्ण सब कृष्ण के, कृष्ण कृष्ण आकार ।
कृष्ण कृष्ण प्रिय कृष्ण जूँ, कृष्ण कृष्ण कर प्यार ॥५॥

कृष्ण कृष्ण यतिवर भजो, कृष्ण कृष्ण नर नार ।
कृष्ण कृष्ण ब्रह्मातमा, कृष्णहिं कृष्ण मुरार ॥६॥

कृष्ण कृष्ण में कृष्ण ही, कृष्ण कृष्ण मन वार ॥
कृष्ण कृष्ण की ध्वनी में, कृष्ण कृष्ण संसार ॥७॥

कृष्ण पूज्य त्रयलोक में, कृष्ण सर्व में सार ।
कृष्ण निरञ्जनदेव यति, कृष्ण आतमा धार ॥८॥

कृष्णाष्टक को प्रेम से, पढ़ो सुनो नर नार ।
कहत निरञ्जनदेव यति, उतरो भवनिधि पार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीकृष्णाष्टक

समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीरामाष्टक ।।१८।।

(दोहा)

राम राम भज रे मना, राम राम उर धार।
राम निरञ्जनदेव यति, परंब्रह्म सुखसार ।।१।।
राम राम जगदीश हरि, राम राम अवतार।
राम राम सबमें रम्यो, राम राम कर प्यार ।।२।।
राम राम भज काम तज, राम राम मन मार।
राम राम शुभधाम है, राम राम से रार ।।३।।
राम राम प्रिय आतमा, ब्रह्म राम उर धार।
राम राम श्रीश्याम हैं, रामहिं राम पुकार ।।४।।
राम राम जग अवधिपति, राम राम सरकार।
राम राम में राम हूँ, राम निरञ्जन सार ।।५।।
राम राम हरि हर भयो, राम राम जग सार।
राम अनादी एकही, राम राम नर नार ।।६।।
राम राम श्रुति देवगण, रामहि राम पुकार।
राम राम जी जात सब, राम राम उर धार ।।७।।

राम राम ब्रह्मातमा, प्रणव रूप ये सार।
राम निरञ्जनदेव यति, रामहि राम बिहार ॥८॥

रामाष्टक को जो पढ़े, ऊँच नीच नर नार।
कहत निरञ्जनदेव यति, आप तरे कुल तार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीरामाष्टक
समाप्तः। ॐ शान्तिः ३॥

अथ श्रीमायाष्टक ॥२०॥

(दोहा)

माया कारण जगत की, माया ही सब देव।
माया पति भगवान भज, कहत निरञ्जनदेव ॥१॥

माया नाना रूपिणी, बहु विध जीवाकार।
माया ब्रह्म मिलाप से, प्रगटो यह संसार ॥२॥

मात तात माया सभी, माया पत्नी रूप।
माया के सब वश भये, रङ्क धनी अरु भूप ॥३॥

माया तीनों गुण भई, माया चौदह लोक।
माया में सब फँस मरे, करें हर्ष अरु शोक॥४

माया आश्रम वर्ण है, माया यज्ञ व्रत दान।
माया से भगवत मिले, माया वेद पुरान॥५॥

माया परम अगाध है, तरैं ब्रह्मवित लोग।
श्रीमुख कहत पुकार के, तज मायामय भोग॥६

माया माया जग रटे, हो माया वश जान।
माया ममता रूप भ्रम, निरञ्जन यती बखान॥७

माया गुरु शिष भाव सब, माया ज्ञान विचार।
कहत निरञ्जनदेव यति, माया नाम असार॥८

माया अष्टक कष्ट को, करे नष्ट ततकाल।
मायापति भगवान जो, सोऽहम् श्री नँदलाल॥९

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीमायाष्टक

समाप्तः। ओं शान्तिः ३॥

अथ श्रीब्रह्माष्टक ॥२१॥

(दोहा)

ब्रह्म अनन्त अनादि जो, सोऽहम अक्रिय जान।
ब्रह्म निरञ्जन आत्मा, जगकारण भगवान ॥१॥

ब्रह्म नाम वर धाम यह, ब्रह्म ब्रह्म परमान।
ब्रह्म ब्रह्म सब ब्रह्म ही, ब्रह्म ब्रह्म श्रुति गान ॥२॥

ब्रह्म बतावे ब्रह्म को, ब्रह्म ब्रह्मऽहम भान।
ब्रह्म देवगण वेद में, ब्रह्म धाम अभिराम ॥३॥

ब्रह्म उपासक ब्रह्म ही, ब्रह्म पुरुष यह नाम।
ब्रह्म समायो ब्रह्म में, ब्रह्मैवाऽहम श्याम ॥४॥

ब्रह्म तत्त्व भज ब्रह्म तू, ब्रह्माऽहम दृढ़ धार।
ब्रह्मवित प्यारे ब्रह्म को, ब्रह्म चिन्तन यह सार ॥५॥

ब्रह्म बतावे तत्त्वमसि, ब्रह्मा हम समिधार।
ब्रह्म निरञ्जनदेव यति, ब्रह्म ब्रह्म व्यवहार ॥६॥

ब्रह्म राम ब्रह्म श्याम तू, ब्रह्म देवन का देव।
ब्रह्म रूप संसार यह, ब्रह्म निरञ्जनदेव ॥७॥

ब्रह्म ब्रह्म में ब्रह्म ही, ब्रह्म ब्रह्म वर जान।
ब्रह्म निरञ्जन आतमा, ब्रह्म कृष्ण श्रुति गान॥८
है ब्रह्माष्टक सार यह, भजो पाप सब डार।
कहत निरञ्जनदेव यति, अहम ब्रह्म दृढ़ धार॥६॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीब्रह्माष्टक समाप्तः। ॐ शान्तिः ३॥

अथ श्रीविचाराष्टक ॥२२॥

(दोहा)

ये मायिक परपञ्च सब, करो कौन सँग प्रीत।
मतलब के सब यार हैं, मुनियन भाषी रीत॥१॥
रे मन सुमरो ब्रह्म को, अखिल आतमा राम।
साक्षी रूप अपार हरि, कृष्णचन्द्र यह नाम॥२॥
सर्वं भाव में भाव वर, भावाभाव अतीत।
यती निरञ्जनरूप में, नहीं भ्रम्म नहिं भीत॥३॥

वपू तीन नहिं गुण गुणी, सत्तामय सुख धाम।
यती निरञ्जनदेव में, सोऽहम रूप अनाम ॥४॥

रागद्वेष तज सर्व से, सर्वं आतमा जान।
घटाकाश महकाशवत, निरञ्जन सर्वं समान ॥५॥

साधू सो जिहि धर्मरति, धरे धर्म संसार।
निरञ्जन रचा धर्म की, युग युग हरि अवतार ॥६॥

मन वाणी अरु काय के, धर्म श्रुती अनुकूल।
पालौ सबै प्रमाद तज, करो न श्रुति प्रतिकूल ॥७॥

धर्मनिष्ट विद्वान जो, तिहिं सँग सत्य विचार।
प्यारे पालो धर्म को, जगजीवन दिन चार ॥८॥

कर विचार अष्टक पढ़ो, निरञ्जन यति उचार।
राग द्वेष सबसे तजो, राव रङ्क नर नार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीविचाराष्टक

समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीकाशीनाथाष्टक ॥२३॥

(दोहा)

पूरण आदी अन्त मधि, तीन काल मम साथ।
साक्षी आतम ब्रह्म नित, जय जय काशीनाथ ॥१॥

पाँचो कोश अतीत जो, वेदसन्त कहे गाथ।
सो शिव साक्षी आतमा, जय जय काशीनाथ ॥२॥

वपू तीन नहिं तीन गुण, इन्द्रिय न्यामक नाथ।
स्वप्रकाश रविलोकवत, जय जय काशीनाथ ॥३॥

ब्राह्मण मन्त्र विभाग जो, वेद चार रुचि साथ।
मुनिवर ध्यावें आपको, जय जय काशीनाथ ॥४॥

उत्पति पालन जग सभी, खेल तुम्हारो नाथ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, जय जय काशीनाथ ॥५॥

माया यन्तर जग भ्रमै, चावी तुम्हरे हाथ।
चिद विलास सबमें भरो, जय जय काशीनाथ ॥६॥

घण्टा भेरी आदि तुम, तुमहि बजावत हाथ।
शिवोऽहमस्मि ध्यान नित, जय जय काशीनाथ ॥७॥

काया काशी में रहो, बुद्धि भवानी साथ।
देह जगत न्यामक अहो !, जय जय काशीनाथ ॥८॥

अष्टक काशीनाथ जो, पढ़ैं सुनैं चित ल्याय।
कहत निरञ्जनदेव यति, ब्रह्म धाम सो पाय ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीकाशीनाथाष्टक

समाप्तः। ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीविवेकाष्टक ॥२४॥

(दोहा)

सत पुरुषन के संग से, सत्यासत्य विवेक।
जे नर कर सुख पावहिं, मिटे भेद भ्रम टेक ॥१॥

चीर नीर में भेद जोँ, हंस हरे ततकाल।
त्योंहीं ब्रह्म विवेक ते, हरो बीर जगजाल ॥२॥

ज्ञान दिवाकर होत है, निशि तम दूर हमेश।
त्योंहीं ब्रह्म विवेक ते, दूर होय सब क्लेश ॥३॥

विन विवेक छूटें नहीं, लोभ, मोह, मद, काम।
विन छूटे पावे नहीं, राम धाम अभिराम ॥४॥

विन विवेक सूझे नहीं, नर जीवन का सार।
विन सूझे पावे नहीं, केवल ब्रह्म अपार ॥५॥

नित्य निरञ्जन को यदि, निरखत चाहो मीत।
निरजन देश निवास कर, निर्मम वन तज भीत ॥६॥

ब्रह्म विवेचन से करो, जगज्जाल को दूर।
शरण निरञ्जन की गहो, केवल जो भरपूर ॥७॥

दशों दिशा तिहुँ काल में, व्यापक केवल एक।
सोइ निरञ्जनदेव हैं, जहाँ न भ्रम की टेक ॥८॥

श्री विवेकाष्टक पढ़ो, गुरु मुख ब्रह्म वित धार।
कहत निरञ्जनदेव यति, केवल ब्रह्म विचार ॥९॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीविवेकाष्टक समाप्तः । ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

अथ श्रीसन्तमहिमाष्टक ॥२५॥

(सवैया)

प्रिय ! सन्त समूह कहो तुमने,
कब आतुर की विपदा न हरी है।
कब सङ्कटमोचन हस्त बढ़ा,
शरणागत पै करुणा न करी है॥
कर दूर महादुखसागर से,
किसमें सुखदा प्रतिभा न भरी है।
कब केवल ब्रह्म विवेचन से,
भ्रम के घर की प्रभुता न हरी है॥१॥
भोग विलास विसार सभी,
समता सबमें भरपूर दिखाई।
मोह महासुर मारन की विधि,
धार दया सबमें प्रगटाई।
अन्त कियो कुसुमायुध को,
प्रिय प्रेमकथा सबको समुझाई।
केवल ब्रह्म विवेक बता,
जग को जग की जड़ता दिखलाई॥२॥

ज्ञान सुगङ्ग वही जिनकी,
निगमागम के पथ में अविरामा ।
मान गई कमला इनको,
निरलोभ अचञ्चल पूरण कामा ॥
डूब गई भवसागर में,
अघ की प्रभुता लख के तपधामा ।
केवल मान निरञ्जन को,
नित गान किये जग ने गुणग्रामा ॥३
जान लियो वसुधा भर को,
परिवार उदार बने जग माँही ।
त्याग दिये कुविचार असार,
निहार सुधार की धूम मचाँई ॥
मानव मान गये सब ही,
अवनीतल पै इनके सम नाँही ।
केवल ज्ञान दिवाकर ने,
तम दूर कियो जग को क्षण माँही ॥४॥
दान करी गुरुता गिरि ने,
जब जान लियो इनको अधिकारी ।

सागर तुल्य अगाध बने,
घन के सम ही पर कारज कारी ॥
भान महेश्वर की महिमा,
मन मोद भरी भक्तो उर धारी ।
केवल कर्म कलाप किये,
फल भोगन की नहिं बात विचारी ॥५॥
शेष रहा कछु और नहीं,
जब जान लियो जग में जगधारी ।
जीवन के फल चार मिले,
अरु छिन्न भये सब संशय भारी ॥
प्रेम पसार मिले सबसे,
सबमें सबके सम ज्योति निहारी ।
केवल आज शुचिः सधुता,
मन भाय गई सब सङ्कट हारी ॥६॥
साहस ही धर के प्रतिमा,
जस आय गयो जग में सुखदाई ।
आलस के बस में न रहे,
सब दूर भई उसकी कुटलाई ।

अञ्चित पौरुष धार धरा पर,
धर्मकथा सबको समुझाई ।
केवल ब्रह्म विवेचन ही,
भवसागर की तरणी बतलाई ॥७॥
पादप के तल में बस के यति,
आयुष काल विताय गये हैं ।
मार मनोभव कीन सही,
भवमोचन भाव बताय गये हैं ॥
त्याग विराग सुनीति बता,
जग में प्रतिभा उपजाय गये हैं ।
केवल ब्रह्म निरञ्जन को,
सबका सरवस्व बताय गये हैं ॥

इति श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वतीविरचित श्रीसन्तमहिमाष्टक समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

———

हरिः ओं तत्सत्

[श्रीमदलौकिकवेदान्तस्तोत्र-समुच्चयः]

अथ श्रीगुर्वष्टकम् ॥१॥

(श्लोकाः)

अजायानादयेऽनन्तायामराय जगत्स्रजे ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥१॥

जीवसौख्यनिधानाय, सत्तारूपेण राजते ।
निरञ्जनाय देवाय, श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥२॥

सर्वेषां साक्षिणेऽकामायानन्दाय चिदात्मने ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥३॥

ज्ञेयध्येयस्वरूपाय श्रुतिसक्तैकचेतसाम् ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥४॥

निर्गुणाय जगच्चित्ररचनाहेतुमायिने ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ५ ॥

जगतां हेतवे तुभ्यं तारकाय परात्मने ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ६ ॥

सर्वदेवेषु देवाय श्रुतिगीताय सर्वदा ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥

शुद्धाय बोधरूपाय जगत्त्रयसुसाक्षिणे ।
निरञ्जनाय देवाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ८ ॥

गुर्वष्टकं पठ प्रेम्णा गुरुभक्त्या च सन्ततम् ।
हर ज्ञानप्रमोदस्त्वं यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥ ९ ॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीगुर्वष्टकं समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीसत्याचाराष्टकम् ॥ २ ॥

(श्लोकाः)

ब्राह्म दिष्टे समुत्थाय स्मृत्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
शौचादिका च कर्तव्या देहयात्रा यथायथम् ॥१॥

स्वशाखाध्ययनं सन्ध्याह्ववने च प्रवर्तय ।
पठोपनिषदं गीताञ्चाष्टोत्तरशतात्मिकाम् ॥२॥

यथाश्रमं श्रुतिप्रोक्तनित्यकर्माणि साधय ।
शरणागतलोकेभ्यो यथा स्वं दीयतां धनम् ॥३॥

निर्गुणाः सगुणा नीचा उत्तमा नृमहीभुजः ।
पिपीलिकाश्च ब्रह्माद्या विष्णुरूपधरा इमे ॥४॥

एकोऽहमिति श्रुत्युक्तिं विभावय दिवानिशम् ।
रागमोहौ परित्यज्य भज ब्रह्म सनातनम् ॥५॥

शुद्धाहारविहारांश्च सर्वत्र प्रियतां कुरु ।
भजनध्यानसत्संगैर्यातु नक्तं दिवं लयम् ॥६॥

चित्ते निधीयतां दैवी संपद्भावं त्यजासुरम् ।
पित्रोर्हरौ गुरौ भक्त्या स्वकालं चातिवाहय ॥७॥

वेदशास्त्रमुनिद्वारमाज्ञावाक्यं प्रभोरिदम् ।
औदार्यमवलम्बध्वं यतिराह निरञ्जनः ॥ ८ ॥

सत्याचाराष्टकमिदं विचारय प्रतिक्षणम् ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते तर वंशञ्च तारय ॥ ९ ॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीसत्याचाराष्टकं समाप्तम् । ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीवितस्ताष्टकम् ॥ ३ ॥

(श्लोकाः)

यशो यदीयं गायन्ति मुनयः श्रुतयस्तथा ।
मात्रे तस्यै वितस्तायै ललितायै नमो नमः ॥१॥

वितस्ता नाम गङ्गेयं शङ्करप्राणवल्लभा ।
विनाशयति दुष्कामं पापञ्चेव तमो रविः ॥२॥

काश्मीरविषये जाता कश्यपर्षिपदे शिवे ।
वितस्ता नाम गङ्गासौ सेव्या नाकनिवासिभिः ॥३॥

अघहंत्री विदां दात्री सर्वकामप्रदायिनी ।
वितस्ता नाम गङ्गैषा तीर्थकोटिस्वरूपिणी ॥४॥

हिमालयचतुःपार्श्वशोभासंपादनक्षमा ।
वितस्ता नाम गङ्गेयं बहुपुष्पफलाकुला ॥५॥

यत्रर्षयस्तपः कुर्वन्त्यकामाः शून्यवासनाः ।
वितस्ता नाम गङ्गा सा वाम्नाय फलरूपिणी ॥६॥

वितस्ता नाम गङ्गाच्छैः पवित्रैः सलिलैर्युता ।
अमृताभैर्निषेव्येयं धर्मध्यानचर्यैः सदा ॥७॥

सूर्यवंशजभूपाला हितनिष्कामराज्यका ।
गङ्गा वितस्ता श्रीकृष्णनिरञ्जनहरेः पदे ॥८॥

कष्टं नष्टं करोत्येतत्तत्कालं वितताष्टकम् ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते नन्द नन्दनमाश्रय ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेव सरस्वतीविरचितं श्रीवितस्ताष्टकं

समाप्तम् । ओं० शान्तिः ३ ॥

———

अथ श्रीगंगाष्टकम् ॥ ४ ॥

(श्लोकाः)

यथाविधि मुरार्यर्चा विधिपूतं जलं विधिः ।
त्रिलोकी तापसंहन्तृ ज्ञात्वाऽग्रह्लात्कमण्डलौ ॥१॥

गङ्गाञ्चलन्तीमुत्तुङ्गामथ स्वर्गे रसातले ।
भूमौ जग्राह शंभुश्च जटाविस्तृतमण्डले ॥२॥

रघुवंशस्य रक्षायै चलिता स्वर्धुनी शिवात् ।
भगीरथतपस्याभिरासीन्मुनिगणेडिता ॥३॥

अरूपेण निरूप्येण पुराणपुरुषेण च ।
तीर्थवेदस्वरूपेण विस्तृता सर्वसाक्षिणा ॥४॥

गङ्गे भागीरथि ज्ञानमयि ब्रह्मात्मिके जय ।
शङ्करप्रीतिनिलये देवि नित्यं जगत्प्रिये ॥५॥

त्यक्त्वा हिमालयं सिन्धु जह्नुकन्या ययौ कृती ।
ब्रह्मज्ञो वासनाशून्यो मन्ये ब्रह्मैव सादरम् ॥६॥

संविदुच्चाटनोत्कृष्टा कर्षणा वनशक्तिदा ।
ब्रह्मज्ञभवनं नित्यं त्वं मोक्षस्थानदायिनी ॥७॥

उच्चा नीचा नरा नार्यो वासनारहिताः सदा ।
भजध्वं जाह्नवीतीरं ब्रवीतीति निरञ्जनः ॥८॥

सत्यं संभाव्यचित्तेन सेव्यं गङ्गाष्टकं मुदा ।
भवाब्धेः पारगास्स्तेति यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥६॥

इति श्रीस्वामि निरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीगंगाष्टकम्
समाप्तम् । ओं० शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीजगन्नाथाष्टकम् ॥५॥

(श्लोकाः)

जगन्नाथो जगद्देवश्चैकः सर्वंजगत्प्रभुः ।
सच्चिदानन्द आत्मासौ सोऽहं प्रत्ययगोचरः ॥१॥

यस्य ध्यानेन स्मृत्या चाविद्या व्याधिर्विनश्यति ।
लोकत्रितयसाक्षी वै सोऽहं मङ्गलमूलकः ॥२॥

कार्यकारणसद्भावः सदा यस्मिन्न विद्यते ।
सोऽहं स्वभावो ब्रह्माजः परात्मा समुदीरितः ॥३॥

शारदाश्रुतिशेषा यं भजन्तोऽपि न पारगाः ।
कृष्णो निरञ्जनो देवो यतिर्वक्तीति कण्ठतः ॥४॥

जगन्नाथं जगद्धेतुं देहदेवालये स्थितम् ।
सोऽहं भावेन भजतेत्याह देवो निरञ्जनः ॥५॥

रम्यज्ञानार्णवतटे ललितानुभवालये ।
अभिरामं जगन्नाथं सोऽहं भजत भावतः ॥६॥

ब्रह्मभासो जगज्जीवः सोऽहं भावेन भासते ।
ज्ञानकल्लोलसंयुक्तज्ञानसिन्धुसुनिर्झरे ॥७॥

विनिरीक्ष्य जगन्नाथं सुन्दरं ज्ञानसागरम् ।
मुक्तये चाञ्चत प्रीतिं कुरु ध्याने निरञ्जने ॥८॥

पठ्यतां श्रूयतां चित्ते धार्यतामष्टकं वरम् ।
जगदीशस्य वक्तीति सारश्चात्मा निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीजगन्नाथाष्टकम्
समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीनामाष्टकम् ॥६॥

(श्लोकाः)

हरे कृष्ण जगद्देव प्रभो गोविन्द माधव ।
ब्रह्मज्ञैः परमानन्द कंदस्त्वमिति संमतः ॥१॥

नवनीतं पयः पृथ्वीं जगत्वञ्चासि सर्वदा ।
राम कृष्ण हरे देव व्याप्नुवानो रमापते ॥२॥

हरिं निरञ्जनं कृष्णं चोच्चारयत सर्वदा ।
रामं प्रगाढया भक्त्या नास्ति तत्र धनव्ययः ॥३॥

कृष्ण कृष्ण घनश्याम राम रामेति वा भज ।
सखे ! नक्तं दिवं देवं प्रभुं स्मर निरञ्जनम् ॥४॥

मधुसूदनमाजानेऽनुकूलो भव सन्ततम् ।
यतिं निरञ्जनं देवं न विस्मर परप्रियम् ॥५॥

कृष्णादिमध्यशेषात्मा त्वं लोकत्रयपूजित ।
यतिं निरञ्जनं देवं परं रूपं प्रदर्शय ॥६॥

परित्यज्य जगत्कार्यं भजेति ब्रह्मणोऽभिधाम् ।
हरे कृष्ण हरे राम राम राम सुखाकर ॥७॥

षड्ज्योतिष्षु ज्योतिर्यत्कृष्णात्मारामतत्प्रियम्।
निरञ्जनयते रूपं देवस्यालं सुखावहम् ॥८॥

नामाष्टकं विचार्यैतत्स्मरेद्यो मैथिलीपतिम् ।
अभिरामो मिलेत्कृष्णो यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ।९।

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीनामाष्टकम्

समाप्तम्। ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीदानाष्टकम् ॥७॥

(श्लोकाः)

सुखानां परमं स्थानं दानं श्रुतिभिरीरितम् ।
तस्माद्दतेऽप्रमाणानि भोगस्वर्गापवर्गकाः ॥ १ ॥
गोब्राह्मणहितं दानं ससम्मानं प्रदीयताम् ।
संवीक्ष्य रामं जनकं हरिश्चंद्रपुरागम् ॥२॥
त्यागी वलिष्ठो जगती वलयेऽभूद्वली सुधीः ।
रक्षितो धर्मकृत्यर्थं विष्णुना प्रभुविष्णुना ॥३॥

अर्पयित्वातिसंमानं तनुं स्वान्तं धनं च यः ।
यशस्वी गीयते वेदैरिति ब्रूते निरञ्जनः ॥४॥

अति तेजस्विनं विद्धि दानवन्तं जगत्रये ।
न च दानसमं किञ्चिद्विधिना मुनिनोदितम् ॥५॥

दानवन्निलयं याति तपस्वी सुमहानपि ।
निरञ्जनो ब्रवीत्येतद्दीयतां शक्तिपूर्वकम् ॥६॥

सर्वदानवरं विद्या दानं विद्धि पुनः पुनः ।
अनूपदिष्टमन्नानां दानं चाह निरञ्जनः ॥७॥

मतिमन्नर्जित वित्तं यत्सत्याशयतः सदा ।
तद्दातव्यमिति प्राह यतिर्देवो निरञ्जनः ॥८॥

मित्राजस्रं विचार्यैतत्पठ दानाष्टकं मुदा ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते लोकद्वयसुखावहम् ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीदानाष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीधर्माष्टकम् ॥ ८ ॥

(श्लोकाः)

श्रीहरिर्व्यापको धर्मस्वरूपो निखिलाश्रयः ।
वेदे शास्त्रे च मुनिभिर्वरैरुक्तः प्रधानतः ॥ १ ॥

वर्णाश्रमान् ससर्जेह गुणकर्मविभागशः ।
प्रभुः पाल्यो निजो धर्मः प्राहेति भगवच्छ्रुतिः ॥२॥

श्रुतिसद्भिर्विनिर्णीतं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
विष्युदारं निजं धर्मञ्चिन्तामणिनिभं बुधः ॥३॥

धर्मेन्द्रियशरीरेभ्योऽसङ्गः सारो निरूपितः ।
आत्मा भिन्न इति ब्रूते यतिर्देवो निरञ्जनः ॥४॥

लौकिको वैदिको धर्मो यः प्रजानां महीभुजाम् ।
ऋग्वेदे हरिणाख्यातः स सर्वश्च पृथक् पृथक् ॥५॥

धर्मः पित्रोर्गुरोर्जाया पत्योश्च पूज्यभावतः ।
दिष्टदेशयुगानां वै मुनिभिः परिकीर्तितः ॥६॥

यदा धर्मस्य हानिः स्यादत्याचारं चरेन्नृपः ।
मुरारिः श्रीहरिः कृष्णः कृपालुः प्रभविष्यति ॥७॥

गोसाधुद्विजकार्याय धर्मसंस्थापनाय च।
आयास्यति परं रूपं धृत्वा श्रीमधुसूदनः ॥८॥

धर्माष्टकविचारेण पाल्यो धर्मः सुसम्मतः।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते कृपां वितरताद्धरिः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीधर्माष्टकं समाप्तम्। ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीभक्त्यष्टकम् ॥८॥

(श्लोकाः)

प्रमाणयन्हरेर्भक्तिं गुरुभक्तिं च सज्जने।
द्विजे पित्रोश्च कर्तव्येत्युक्तं भक्तिर्महर्षिभिः॥१॥

भक्तिभावाद्गुरोः प्राप्तिर्ज्ञानप्राप्तिर्महागुरोः।
मोक्षप्राप्तिश्च विज्ञानादित्युक्तं वेदशास्त्रयोः॥२॥

प्रह्लादेन कृता भक्तिर्द्रौपद्या च ध्रुवेण वै।
भक्तिर्हरिप्रिया चात्र मानं गोपसुताजनः॥३॥

त्यक्त्वा भक्तिं भवेकार्यं योऽन्यत्संसाधयेन्नरः ।
तत्तस्य विफलं ब्रूते यतिर्देवो निरञ्जनः ॥४॥

ज्ञानप्रसाधनं भक्तिः श्रुतिभिः परिकीर्तिता ।
स्वमुखेन कृपासिन्धुर्हरिर्ब्रूते पुनः पुनः ॥५॥

श्रुतज्ञाश्श्रूयतां भक्तिः श्रीकृष्णपरमप्रिया ।
अधीनः प्रेमभक्तयोश्च श्रीहरिर्ज्ञायतामिति ॥६॥

ब्रूते भक्तौ गुणाधिक्यं सनकादिस्तथा शुकः ।
मतिमन्भज श्रीकृष्णं यतिः प्राह निरञ्जनः ॥७॥

आत्मानमनुसंधाय वरा भक्तिरिति स्मृतम् ।
श्रुतिभिर्निर्मलं ध्याने प्रियप्राणान् समर्पय ॥८॥

श्रेष्ठं भक्तयष्टकं चैतत्प्रियभक्तेष्टपूर्तये ।
कृष्णसंप्राप्तये ब्रूते यतिर्देवो निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीभक्तयष्टकं
समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीप्रेमाष्टकम् ॥१०॥

(श्लोकाः)

सखे ! प्रेमपदार्थोऽस्मिन्दुर्लभो जगतीतले ।
शुद्धप्रेम्णा हरेः प्राप्तिरियं रीतिः सनातनी ॥१॥

आकृष्टः प्रीतिसंतानैर्गोपीनामगमद्धरिः ।
गोपभावं जगत्कर्ता तारको भक्तवत्सलः ॥२॥

संस्मरन् भक्तरीतिञ्च श्रीकृष्णो जगतः सखा ।
प्रेमपात्रं पिबत्याहेहेतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥३॥

भरतध्रुवप्रह्लादद्रौपदीगजनाथगम् ।
स्नेहं संस्मृत्य स्वस्वान्तं तद्विशिष्टं विधीयताम् ॥४॥

प्रेम प्रेमेति भाषन्ते विरलाः प्रेमवल्लभाः ।
कठिनेति यतिर्ब्रूते प्रेमरीतिर्निरञ्जनः ॥५॥

सर्वानीतिच्चयकरं रामसंप्रापकं यतिः ।
प्राह मित्र भजात्मानमिति देवो निरञ्जनः ॥६॥

लोकवेदभयं त्यक्त्वा विस्मृत्य व्यवहारकम् ।
कृष्णप्रीतिसमासक्तः स्नेही स्नेहे निमज्जतात् ॥७॥

प्रेमिप्रेमप्रभावर्द्धि स्वच्छान्तःकरणः सखे ! ।
द्वैतभावं परित्यज्य श्रीकृष्णं भज सर्वदा ॥८॥

यः पठेत्कण्ठतः प्रेमाष्टकं शोभनचेतसा ।
शृणुयाच्चेति श्रीकृष्णो यतिस्तस्याह रक्षकः ॥६॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीप्रेमाष्टकम्
समाप्तम्। ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीसत्सङ्गमहिमाष्टकम् ॥११॥

(श्लोकाः)

अनादेर्ब्रह्मणोऽनंतस्यावगस्य जगत्कृतम् ।
लीलया साररहितं सतां संगतिमाचर ॥१॥

निःसंगैर्ब्रह्मनिष्ठैश्च श्रोत्रियैर्विजितेन्द्रियैः ।
तत्त्वणं ज्ञानलाभायाचर्यतां साधुसंगमः ॥२॥

श्रुतिस्मृतिपुराणैश्च श्रीमुखेन स भाषितः ।
सत्संगो धार्मिकैः कार्यो मुक्तिकामैः सदोद्धव ॥३॥

लोकसंगं धरां स्थानं धनं जायान्त्यजोद्भव ।
सत्संगः क्रियतां दृष्ट्वा श्रीकृष्णं प्रीतिभाजनम् ॥४॥

वशिष्ठेन नोच्यते राम श्रूयतां मोक्षसाधनम् ।
ब्रह्मज्ञं यतिमभ्यर्च्य क्रियतां साधुसंगमः ॥५॥

भाषितं मुनिभिर्नानाविधं ज्ञानस्य साधनम् ।
वरः साधु समासंगः श्रुतिसिद्धान्तनिश्चितः ॥६॥

साधुसंगः प्रियोऽद्वैता संगिनां विदुषां सदा ।
उदारबुद्धियुक्तानां यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥७॥

जगदुद्धारकोऽसंगो यतिरूपो हितो हरिः ।
पूज्यतां साधुभावेन सत्संगश्च विधीयताम् ॥८॥

सत्संगमहिमानं कः कविर्वर्णयितुं क्षमः ।
वेदाः प्रमाणमित्यत्र प्राह देवो निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीसत्सङ्गमहिमाष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीगौर्यष्टकम् ॥१२॥

(सतोगुणप्रधाना बुद्धिः)

(श्लोकाः)

धैर्यं धारय स्वस्वान्ते गौरीत्युक्तं परात्मना ।
तथ्यं ज्ञात्वा गुरोर्वाक्यं सदा भजनमाचर ॥१॥
वासनात्रितयं हित्वा गौर्यात्मानं भजानिशम् ।
ज्ञानप्रभावतो ब्रह्म प्राप्नुताच्छातमन्दिरम् ॥२॥
कामः क्रोधश्च मानश्च ममता त्यज्यतामुमे ! ।
तृणीकृत्य जगज्जालं पूज्यतां श्रीहरिर्गुरुः ॥३॥
स्मर्यतामनिशं गौरि ! ब्रह्मश्रेष्ठं सनातनम् ।
गतेष्वमूल्यकालेषु भज कृष्णं घनोपमम् ॥४॥
विरक्ता विषयेभ्यश्चानुरक्ता पादयोर्गुरोः ।
हरेर्हैमवति ! ब्रह्म ध्यायतां प्रेमभावतः ॥५॥
उदारां बुद्धिमाश्रित्य चीयमाणेषु जन्मसु ।
प्रज्वालय जगच्छर्म ज्ञानाग्नौ त्वमुमे शुभे ! ॥६॥

गौरि ! श्रीगुरुनाथस्य स्मर नित्यं पुनः पुनः ।
ज्ञानाभयदकृष्णाय नमो वाचं प्रवर्तय ॥७॥

पूर्वभक्तिं समीक्ष्योमे प्रसन्नो गुरुनाथकः ।
असारतो भवाद्धस्त ग्राहं निष्काशयत्यलम् ॥८॥

गौर्यष्टकं पठेन्नित्यं यः श्रीगुरुपदप्रियः ।
निर्मलज्ञानमाहात्म्याद्भवाब्धेः पारगश्च सः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीगौर्यष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीज्ञानवैराग्याष्टकम् ॥१३॥

(श्लोकाः)

ज्ञात्वा मायामयं सर्वं जगत्स्वप्नविलासवत् ।
अभून्नरपतीराज्यं परित्यज्य यमातिथिः ॥१॥

आजन्म व्याधिसंकाश घनाशाभोगजालकम् ।
त्यज्यताञ्च मनः कृष्णः स्मर्यतामनिशं सखे ! ॥२॥

भृत्यबान्धवसंदोहा जनकभ्रातृमातरः ।
मृगतृष्णा प्रतीकाशा वेदैश्चोक्ताः स्ववक्त्रतः ॥३॥

विष्टपे वलिनं भोगरोगं पापादिकारणम् ।
रे मनस्त्यज्यतां सर्वं निमज्ज स्वात्मशर्मणि ॥४॥

गुरुभिः श्रुतिभिश्चेति कथितं चंचलञ्जगत् ।
परित्यज्य भजात्मानमिति ब्रूते निरञ्जनः ॥५॥

वरः सज्जनसंतोषः संगो ब्रह्मविदान्तथा ।
मत्वेति त्यज्यतां भोगो यतिराह निरञ्जनः ॥६॥

निर्जने निवसन्देशे धारयञ्छ्रवणादिकम् ।
निरञ्जन हरिज्ञानप्रेमोदानुभवं कुरु ॥७॥

सोऽहमस्मीति वाक्यं चाभ्यस्यतामिह सादरम् ।
चित्तेऽस्तु निर्मलं ज्ञानं ब्रवीतीति निरञ्जनः ॥८॥

ज्ञानवैराग्ययोरष्टकं पठेच्छृणुयाच्च यः ।
ध्रुवं मुक्तिर्भवेत्तस्य प्राह देवो निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीज्ञानवैराग्याष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीयोगाष्टकम् ॥१४॥

(श्लोकाः)

योगागमनयं रम्यं पतञ्जलिविभाषितम् ।
भगवन्तं भज प्रेम्णा साधयित्वा यथाक्रमम् ॥१॥

प्राणायामप्रभेदाश्च प्राप्यतां गुरुशास्त्रतः ।
सुखसारक्रिया कार्या कृत्वा सिद्धासनं दृढम् ॥२॥

अतिचञ्चलमायुर्वै मनो विद्धि पुनः पुनः ।
निश्चलब्रह्मचर्येण क्रियतां ब्रह्मचिन्तनम् ॥३॥

यज्ञं तीर्थं तपो दानं ध्यानातुल्यं विभाव्य च ।
राजयोगं वरं सेव स्वाम्नाय विहितं मुदा ॥४॥

युक्ताहारविहारांश्च युक्तनिद्रां सखे ! कुरु ।
साधुब्रह्मज्ञसंप्रीतिं देवो वक्ति निरञ्जनः ॥५॥

निर्जने विषये वासं कुरु भोगे मुदं त्यज ।
हृदि धारय संतोषं नास्ति भाग्यमतः परम् ॥६॥

स्वप्नेन्द्रजालसंकाशा मृगतृष्णानिभा सखे !
लोकत्रितयसृष्टिश्च श्रुतिभिः परिभाषितः ॥७॥

कार्यात्मकस्य जगतो जानीहि ब्रह्म कारणम् ।
अधिष्ठानादभिन्नं यच्छदध्यस्तं प्रमाणकम् ॥८॥

उच्चानीचा नरा नार्यो पठन्तु च निरन्तरम् ।
योगाष्टकं यतिर्ब्रूते पारं यात भवाम्बुधेः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीयोगाष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीसन्न्यासाष्टकम् ॥१५॥

(श्लोकाः)

ब्रह्मचर्येण वै लब्ध्वा वेदाभ्यासं गुरोर्मुखात् ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥१॥

आश्रमानुक्रमं रम्यं धर्मं कृत्वाथवा भवे ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥२॥

प्रभूतकन्याससल्लाभां कृत्वा वेदोदितक्रियाम् ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥३॥

ज्ञानप्रकाशिका गीता श्रुतिः सूत्रञ्च पठ्यताम् ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥ ४ ॥

श्रुतिश्रवणजानन्दं लब्ध्वा ज्ञानस्य साधनम् ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥ ५ ॥

तत्त्वमभ्यस्य सन्ताप वासनानाशकं पुनः ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥ ६ ॥

साधु ब्रह्मविदां सङ्गं कृत्वैकान्ते वसन्सदा ॥
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥ ७ ॥

ब्रह्म प्रकाशनं ब्रह्म चिन्तनेन मुनीश्वरः ।
वेदानुगुणनिर्दोषं कर्म सन्न्यासमाचर ॥ ८ ॥

त्यज्यतां विषयाभोगः पठ्यतां गुरुतत्त्रयी ।
क्रियतां कर्म सन्न्यासः श्रुतिश्चाह निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीसन्न्यासाष्टकम्

समाप्तम् । ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीनिर्वाणाष्टकम् ॥१६॥

(श्लोकाः)

आदौ मध्येऽवसाने चात्मैकः साक्षी निरञ्जनः ।
प्रमाणतां भजन्तेऽत्र श्रुतिप्राणमनांसि च ॥१॥

अनिर्वाच्यमगम्यं यत्परमं पावनं तथा ।
शुद्धं बुद्धं घनं नित्यं ज्ञानं ब्रह्मामृतं स्मृतम् ॥२॥

स्वप्रकाशस्वरूपं यन्निजानन्दमयन्तथा ।
लोकत्रितयपूज्यं संगीतं वेदपुराणकैः ॥३॥

अनाद्यनन्तमेकं यत्पुराणं शाश्वतं परम् ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते निर्वाणं पूरणं पदम् ॥४॥

प्रमाणपञ्चकातीतं वृत्तिज्ञानश्रुतिस्मृतम् ।
निर्वाणिजननिर्वाणं परमानन्दकन्दलम् ॥५॥

यस्य ध्यानेन मुनिभिर्गलितप्राणमानसैः ।
कृष्णो निरञ्जनज्ञानरूपश्चात्मा स ईरितः ॥६॥

निर्वाणमनिरूप्यं च सत्यरूपममानकम् ।
कृष्णो निरञ्जनो देवो यतिः प्राह निरन्तरम् ॥७॥

व्रतकर्मोप्यस्ति योगश्रवणादिप्रमाणकम् ।
ब्रह्म निर्वाणमानन्दं ब्रूते देवो निरञ्जनः ॥८॥
निर्वाणाष्टकमेतद्यो भूयो भूयो विचारयेत् ।
मुक्तिस्तस्य भवेद्देवो यतिराह निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीनिर्वाणाष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीस्वप्नप्रबोधाष्टकम् ॥१७॥

(श्लोकाः)

मायानिद्रासुशय्यायां जीवा ये शेरतेऽखिलाः ।
ब्रह्मविद्गुरुसन्मित्र प्राप्त्या ते चेह जाग्रति ॥१॥
कोऽहं कश्चेति संसारो भ्रमं त्यक्त्वा विचारय ।
तत्त्वमस्यादि वाक्यानि श्रुत्वा श्रीगुरुतः श्रुतीः ॥२॥
स्ववपुर्बिम्बमालोक्य भ्रान्त्या बालोऽवबुध्यते ।
हा मातस्तात एषोऽत्र प्रेतो मे सम्मुखे स्थितः ॥३॥

तदा जनन्यतिप्रेम्णा बोधयामास बालकम् ।
छायेयं वपुषस्ते त्वं त्यज वीर ! भ्रमाशयम् ॥४॥
मातृवद्धितकर्त्रीयं श्रुतिर्नाशयति भ्रमम् ।
सच्चिदानन्दकन्दस्त्वं तत्त्वं चासि बुध्यताम् ॥५॥
स्वप्नेशजीवसत्संगज्ञानतीर्थतपांसि च ।
उपासनाकर्म जगद्गुरून्विद्धि प्रकल्पितान् ॥६॥
मातरं पितरं नारीं कुलं वर्णाश्रमव्रजान् ।
प्रपञ्चं स्वप्नतुल्यं च ज्ञात्वा वेदं विचारय ॥७॥
माया निद्रा प्रदोषेण संसारोऽयं प्रभासते ।
जातं ज्ञानं गता निद्रा नष्टा भ्रान्तिर्विशेषगा ॥८॥
इदं स्वप्नप्रबोधं चाष्टकं वेदार्थविस्तरम् ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते ब्रह्मास्मि ज्ञानधारकम् ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीस्वप्नप्रबोधाष्टकं

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

———

अथ श्रीकृष्णाष्टकम् ॥१८॥

(श्लोकाः)

यतिर्निरञ्जनो ब्रूते कृष्णब्रह्म समुच्चरन् ।
कृष्णनामवरध्यानैश्चानन्दी भव सर्वदा ॥१॥

कृष्णो निरञ्जनश्चैकः कृष्णः कृष्णो वचो वलम् ।
कृष्णो नन्दात्मनः कृष्णः कृष्णः कृष्णो जगत्प्रभुः ॥२॥

कृष्णकृष्णो जगत्सारः कृष्णः कृष्णः सुखालयः ।
कृष्णः कृष्णो हरिः कृष्णो गोपालो नन्दनो विभुः ।३।

कृष्णः कृष्णः सुखस्थानं कृष्णः कृष्णो विचिन्तयेत् ।
कृष्णः कृष्णो विभुः कृष्णः कृष्णो वेदे प्रकीर्तितः ।४।

कृष्णः कृष्णोऽखिलः कृष्णस्याकारो भाषते जनः ।
अयं कृष्णोऽप्ययं कृष्णः कुरु कृष्णमिति प्रियम् ॥५॥

कृष्णं कृष्णं नरं नारीं कृष्णं कृष्णं मुहुर्मुहुः ।
कृष्णं कृष्णं मुरारिं च ब्रह्मात्मानं यते भज ॥६॥

कृष्ण कृष्ण ध्वनौ कृष्णो भवः कृष्णमयस्तथा ।
कृष्णः कृष्णः कृष्ण एवातः कृष्णं भज रे मनः ॥७॥

सर्वस्मिन्साररूपश्च कृष्णस्त्रैलोक्यपूजितम् ।
आधारः कृष्ण आत्मेति यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥८॥

पठ्यतां श्रूयतां कृष्णाष्टकं नार्यो नरा मुदा ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते यात पारं भवोदधेः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् । ओं शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीरामाष्टकम् ॥१८॥

(श्लोकाः)

भजस्व रे मनो रामं रामं धारय मानसे ।
सुखसारं परं ब्रह्म यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥१॥

जगदीशो हरी रामो रामो रामो गुणाकरः ।
रामः सर्वत्र रम्यश्च रामं रामं कुरु प्रियम् ॥२॥

भज रामं क्रियां त्यक्त्वा रामं रामं मनोहरम् ।
रामो रामः शुभस्थानं रामो रामः परप्रियः ॥३॥

रामं रामं प्रियात्मानं कुरु ब्रह्म च चेतसि ।
रामं रामं घनश्यामं राममेव समाह्वय ॥४॥

रामो रामो जगच्छिल्पी रामो रामो जगत्प्रभुः ।
रामो रामोऽस्म्यहं रामो रामः सारो निरञ्जनः ॥५॥

रामो रामो हरिः शंभू रामो रामो जगद्धनम् ।
अनादी राम एकश्च रामो रामोऽवला नरः ॥६॥

रामो रामो राम एव गीतो वेदैस्तथामरैः ।
सर्वञ्च रामजं विद्धि रामं रामं विचिन्तय ॥७॥

सारः प्रणवरूपश्च रामो ब्रह्मात्मतां गतः ।
रामो रामो विहारीति ब्रूते देवो निरञ्जनः ॥८॥

रामाष्टकं पठेयुर्ये चोच्चा नीचा नराः स्त्रियः ।
तरन्तु ते यतिर्ब्रूते स्वकुलं तारयन्तु च ॥९॥

इति श्री स्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीरामाष्टकं

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीमायाष्टकम् ॥२०॥

(श्लोकाः)

जगतः कारणं माया मायैव सर्वदेवता ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते भज मायापतिं प्रभुम् ॥१॥

माया नाना स्वरूपा च वहुजीवा कृतिस्तथा ।
माया ब्रह्मविनोदेन संसारोऽयं प्रभासते ॥२॥

माया पत्नी स्वरूपा च माया माता तथा पिता ।
रङ्का भूपा धनाढ्याश्च मायाधीना भवन्ति च ॥३॥

चतुर्दश जगन्माया गुणत्रितयरूपिणी ।
मायापाशवशाः सर्वे शोकं हर्षञ्च कुर्वते ॥४॥

माया यज्ञो व्रतं दानं माया वर्णाश्रमोऽस्ति च ।
मायया भगवत्प्राप्तिर्माया वेदपुराणकम् ॥५॥

तरन्ति दुस्तरां मायां ब्रह्मज्ञा लीलया जनाः ।
त्यज्यन्तां विषयाभोगाश्श्रीमुखेनेति भाषितम् ॥६॥

विद्धि मायावशा लोका मायां मायां रटन्ति च ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते त्यज मायां भ्रमात्मिकाम् ॥७॥

माया ज्ञानं विचारश्च माया शिष्यो गुरुस्तथा ।
असारो नाम मायेति ब्रूते देवो निरञ्जनः ॥८॥

मायाष्टकं करोत्येतत्तत्कालं कष्टखण्डनम् ।
मायापतिः श्रीभगवान् सोऽहं श्रीनन्दनन्दनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीमायाष्टकं

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीब्रह्माष्टकम् ॥२१॥

(श्लोकाः)

ब्रह्माक्रियमनन्तं चानादि सोऽहं निरञ्जनम् ।
ब्रह्मात्मा भगवांल्लोककारणं परतः परम् ॥१॥

ब्रह्म ब्रह्म परं मानं ब्रह्म ब्रह्म परं पदम् ।
ब्रह्म ब्रह्म श्रुतिप्रोक्तं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥२॥

ब्रह्म ब्रह्माहमस्मीति ब्रह्म ब्रह्माह केवलम् ।
ब्रह्म देवगणो देवो ब्रह्मधाम मनोहरम् ॥३॥

ब्रह्म ब्रह्मोपासकश्च ब्रह्म पूरुष नाम च ।
ब्रह्म ब्रह्मणि पूर्णं च ब्रह्म स्यामहमेव च ॥४॥

ब्रह्म तत्त्वं भज ब्रह्म ब्रह्माहमिति धारय ।
ब्रह्म ब्रह्म प्रियं ब्रह्म चिन्तनं सारवस्तु च ॥५॥

ब्रह्मणोक्तं तत्त्वमसि ब्रह्माऽस्मीति वचस्तथा ।
ब्रह्म ब्रह्म व्यवहृतिर्यतिः प्राह निरञ्जनः ॥६॥

श्यामस्त्वं ब्रह्म रामस्त्वं देव देवस्तथापरः ।
संसारो ब्रह्मरूपोऽयं ब्रह्मदेवो निरञ्जनः ॥७॥

ब्रह्म ब्रह्मणि ब्रह्मैव ब्रह्म ब्रह्म निरञ्जनम् ।
कृष्ण श्रुति च या गीतं ब्रह्मात्मा परमं पदम् ॥८॥

भज ब्रह्माष्टकं सारं त्यज वृजिनजालकम् ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते ब्रह्मास्मीति विचारय ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीब्रह्माष्टकम्

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

———

अथ श्रीविचाराष्टकम् ॥ २२ ॥

(श्लोकाः)

प्रपञ्चो मायिकः सर्वः स्वार्थसाधनतत्परः ।
नोचिता सह कैः प्रीतिरियं रीतिः स्मृतर्षिभिः ॥१॥

रे मनः स्मर्यतामात्मा रामो ब्रह्माखिलो हरिः ।
साक्षी श्रीकृष्णचन्द्रश्चेति नाम ब्रह्मणः सदा ॥२॥

सर्वभावे वरो भावो भावाभावौ निरूपितौ ।
देवोऽश्रांतोऽभयश्चेति यतिः प्राह निरञ्जनः ॥३॥

वपुस्त्रितयनिर्मुक्तं सत्तामात्रसुखास्पदम् ।
सोऽहं रूपमनिर्वाच्यं यतिर्ब्रूते निरञ्जनः ॥४॥

जानीहि सर्वमात्मानं रागद्वेषमदांस्त्यज ।
घटाकाशमहाकाशतुल्यो भाति निरञ्जनः ॥५॥

युगे युगे हरी रक्षामवतीर्णो निरञ्जनः ।
धर्मस्य कुरुते साधु प्रीतिञ्चावतिसंस्थितिम् ॥६॥

कायेन मनसा वाचा धर्मं वेदाविरोधिनम् ।
अवत्यज प्रमादं च प्रतीपं नाचर श्रुतेः ॥७॥

विदुषा ब्रह्मनिष्ठेन सह संगं समाचर ।
धर्मम्पालय संचित्य जगज्जीव क्षयिष्णुताम् ॥८॥

भूपा रङ्का नरा नार्यो रागद्वेषच्युताशयैः ।
विचाराष्टकमाहेति पठ्यतां यतिपुंगवः ॥६॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं विचाराष्टकं

समाप्तम् । ॐ शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीकाशीनाथाष्टकम् ॥२३॥

(श्लोकाः)

आदिमध्यान्तसंपूर्णः कालत्रितयगोचरः ।
आत्मा साक्षी ब्रह्म नित्यं काशीनाथो जयत्वलम् ॥१॥

अतीतः पञ्चकोषाद्यो वेदसज्जनकीर्तितः ।
साक्षी शिवोऽसावात्मा च काशीनाथो जयत्वलम् ॥२॥

स्वप्रकाशस्तमःशत्रुर्लोकवत्कारणं प्रभुः ।
वपुर्गुणत्रयी शून्यः काशीनाथो जयत्वलम् ॥३॥

मन्त्रब्राह्मणसंभिन्नैर्वेदैः प्रेम्णा च योगिभिः ।
ध्यातः कालत्रये नित्यं काशीनाथो जयत्वलम् ॥४॥

उत्पत्त्यवनाशास्ते लीला खेलाः प्रभोरिमे ।
सत्यं ज्ञानमनन्तञ्च काशीनाथो जयत्वलम् ॥५॥
माया यन्त्रजगद्भ्रांतिकारिणी कुंचिका करे ।
यस्य तेऽसौ चिदानन्दी, काशीनाथो जयत्वलम् ॥६॥

घण्टाभेर्यादिवाद्यानि वादयन्स्वकरैर्मुदा ।
शिवोऽस्मीति सदा ध्यातः काशीनाथो जयत्वलम् ॥७॥

साकं बुद्धिर्भवान्या मे काश्यां कायोऽवतिष्ठते ।
यस्यानुग्रहतो यन्ता काशीनाथो जयत्वलम् ॥८॥

काशीनाथाष्टकं लोकोऽलं पठेच्छृणुयाच्च यः ।
निरञ्जनो यतिर्ब्रूते ब्रह्मस्थानं लभेत सः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीकाशीनाथाष्टकम्

समाप्तम् । शान्तिः ३ ॥

———

अथ श्रीमनोनिग्रहाष्टकम् ॥२४॥

(श्लोकाः)

ओमनादि परं ब्रह्म मनो भज मुहुर्मुहुः।
उदारं भज सोऽहं च चिदाकाशविनिर्मलम् ॥१॥
सिन्धुविन्दुनयेन त्वं विचारय पुनः पुनः।
कुरु चिन्तनदार्ढ्येन सत्याम्भसि निमज्जनम् ॥२॥
परप्रकाशेऽनन्तेऽजे श्रीकृष्णे रुचिमाचर।
कुरु कुम्भकसारं वै प्राणायामं सुनिश्चलम् ॥३॥
व्यष्ट्या समष्ट्योपहिते दूषणे नाम रूपके।
हते ज्ञानकुठारेण भाति ब्रह्म हिरण्यवत् ॥४॥
आध्यात्मिकेष्वहं साक्षी चाधिदैविकसर्जने।
आधिभौतिकजातेषु कल्पनामिति संकुरु ॥५॥
चतुर्दश जगत्त्यक्त्वा मनोमायाप्रकल्पितम्।
पश्य सर्वस्य कर्तारं श्रीकृष्णाख्यं परं महः ॥६॥
नभोनीलाञ्जगत्सर्गा वननाशान्विभावय।
स्वं जानीहि परं ब्रह्मेत्याह साधुर्निरञ्जनः ॥७॥

नित्ये ज्ञानमये शुद्धे बुद्धे चानन्दरूपके।
घटाकाशे महाकाशे मनो ब्रह्मणि योजयेत् ॥८॥
पठ द्वारं ब्रह्मविदां मनोनिग्रहमष्टकम्।
उच्चार्य वाक्यं कृष्णोति यतिराह निरञ्जनः ॥९॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितं श्रीमनोनिग्रहाष्टकं समाप्तम्। ओं० शान्तिः ३ ॥

अथ श्रीअनुभवाष्टकम् ॥२५॥

(श्लोकाः)

अखण्डश्चरमश्चण्डो ज्ञप्तिरूपो निरञ्जनः।
निष्कलस्त्रिगुणातीतः सत्तामात्रो रसो घनः ॥१॥
जगत्कर्ता चिदानन्दोऽपारोऽनन्तो निरञ्जनः।
वेददेवादिपर्यायैरात्मा मुनिभिरीरितः ॥२॥
न देवो न नरो नारी ध्याता ध्येयं न किञ्चन।
सुखं निरञ्जनं ब्रह्म सर्वात्मेति श्रुतिर्जगौ ॥३॥
साक्षी स्वयं चिदानन्दो देवः सादृश्यवर्जितः।
अनुभूतिः स्वरूपश्च सोऽहं प्रत्ययगोचरः ॥४॥

माया शक्तिर्ब्रह्ममयी वियन्नीलनिभापरा ।
विषमे भगवच्छ्रुत्या कथमाभास उच्यते ॥५॥
जीवेशादि जगत्क्लृप्तिः श्रुत्याचार्येण चोच्यते ।
आत्मानिरञ्जनो देवो विषयो नेति शब्दमा ॥६॥
सत्तामात्रप्रकाशत्वान्महतोऽपि महीयसः ।
उत्पत्त्यवनाशञ्च कः कुर्यात्सर्वसंभवात् ॥७॥
अमन्त्यजनिजं ब्रह्म विद्धि देवो निरञ्जनः ।
प्राह वेदेषु वेदस्त्वं देवो देवेषु निर्गुणः ॥ ८ ॥
त्यक्त्वाभिमानममते पठेद्योऽनुभवाष्टकम् ।
निर्वाणं निश्चयपदं तस्य स्यात्साधुसंगमः ॥९॥

॥ दोहा ॥

वेदान्त स्तोत्र समुच्चय यह, सर्वजगत हितकार ॥
प्राकृत को गिरिवान में, भाषा करूँ उदार ॥१॥
लोकनाथपण्डित कहें, विद्यावारिधि नाम ॥
त्रूटी मार्जन कीजिये, सर्वकवी गुणधाम ॥२॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविनिर्मितं श्रीमदलौकिक-
वेदान्तस्तोत्रसमुच्चयः समाप्तः । ॐ शान्तिः ३ ॥

हरिः ओं तत्सत्

अथ श्रीपरमपावनप्रेमध्वनि प्रारम्भः

श्रीस्वामी निरञ्जनदेव सरस्वती

॥ विरचित ॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वाला मालकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥१।

(दोहा)

सच्चित आनन्द आत्मा, कृष्ण ब्रह्म भगवान ।
स्तुति गायन बुधि करे, प्रेम ध्वनी परमान ॥

टेक—पूजन अस्तुति वहुविध करके,
प्यारा कृष्ण मनावोंगी ॥
रथ वनाय स्थूल देह को,
इन्द्रियन अश्व लगावोंगी ॥

साज प्राण मन करूँ सारथी,
वैठ कृष्ण पै जावोंगी ॥ पू० ॥

जय सर्वातम श्रुति पथ पालक,
योँ कहि सीस नवावोंगी ।
दर्शन पाकर साज आरती,
जय जय हरि ओं गावोंगी ॥ पू० ॥

शुद्ध भाव का दीपक करके,
वाती शील वनावोंगी ।
शान्ती तेल भरूँ सप्रीति,
ब्रह्मऽहं ज्योति जगावोंगी ॥ पू० ॥

लोक लाज की धूप दिखावों,
समता थाल सजावोंगी ।
दया पुष्प अरु कुमकुम प्रीती,
विनय शिवोऽहं गावोंगी ॥ पू० ॥

काम क्रोध मद लोभ मोह का,
जा नैवेद्य चढ़ावोंगी ।

दीनदयाल जगत के स्वामी,
पाहि माम कहि ध्यावोंगी ॥ पू० ॥

ध्रुव प्रह्लाद की रच्छा कीनी,
मैं अब कित बल जावोंगी।
गज राजा के बन्धन काटे,
द्रौपदि लाज जितावोंगी ॥ पू० ॥

प्रेम अकर्षण करके नीमें,
खींच कृष्ण को ल्यावोंगी।
या तो मिलि हैं प्राण पियारा,
नहीं तो प्राण गमावोंगी ॥ पू० ॥

होय दयाल दरस प्रभु दीजे,
मैं आतम सुख पावोंगी।
तुझ बिन है प्रभु कौन हमारा,
रो रो विनय सुनावेंगी ॥ पू० ॥

करता हरता हो जग पालक,
छोड़ तुम्हें कित जावोंगी।

पतित उधारण नाम तुम्हारा,
यों कहि विनय सुनावोंगी ॥ पू० ॥

ममता मोह निवारो मेरा,
मैं तुम पर वलि जावोंगी ।
वां गार्गी निर्भय कीजे,
गुणावाद प्रभु गावोंगी ॥ पू० ॥

सन्त समागमनी मैं करके,
मिथ्या भाव भुलावोंगी ।
अस्ति भाति है प्रियवर प्यारा,
ताको कण्ठ लगावोंगी ॥ पू० ॥

नाम रूप की भेंट कल्पना,
सर्व ब्रह्म यह ध्यावोंगी ।
जन्म मरण के संशय मेंटू,
जाय परम पद पावोंगी ॥ पू० ॥

पुण्य पाप दो ईन्धन जोई,
अग्नी ज्ञान जलावोंगी ।

भस्म बनाय लगाऊँ तन को,
शङ्कर रूप दिखावोंगी ॥ पू० ॥

ओं नाद में लेकर अपने,
बैठि कैलास बजावोंगी ।
एको ब्रह्म द्वितीया नास्ती,
ऊँची कूक सुनावोंगी ॥ पू० ॥

सोऽहं ऽहं सो डमरू बाजै,
आनँद मङ्गल गावोंगी ।
भेदाभेद की त्याग कल्पना,
ब्रह्मानँद सुख पावोंगी ॥ पू० ॥

वाम रु शुक ज्यों दत्त दिगम्बर,
तैसे काल बितावोंगी ।
ज्ञान विराग धरूँ दृढ़ मन में,
मैं ब्रह्म पदवी पावोंगी ॥ पू० ॥

जन्म सफल तब होय हमारा,
ब्रह्मज्ञान जब पावोंगी ।

जगत वासना तज के सगरी,
ब्रह्म लीन हो जावोंगी ॥ पू० ॥
अर्ज हमारी खुशी तिहारी,
वारम्वार सुनावोंगी ।
कृष्ण निरञ्जन भव दुख भञ्जन,
हरिहर देव मनावोंगी ॥ पू० ॥
मिटी वासना ज्ञान भयो जव,
सेऽहंऽहं सो गावोंगी ।
आठ पहर आतम रँगराती,
शिवोऽहं ध्वनी लगावोंगी ॥ पू० ॥
अन्तर वाहिर पूरण स्वामी,
ऊरण भाव भुलावोंगी ।
पंच कोश देह त्रयन्यारा,
ब्रह्मातम चित ल्यावोंगी ॥ पू० ॥
सर्व ब्रह्म यह दृष्टि हमारी,
झगड़ाभेद मिटावोंगी ।

केवल देव निरञ्जनप्यारा,
ब्रह्मैवाहं ध्यावोंगी ॥ पू० ॥

दोहा।

प्रेमध्वनी यह सार है, जो कोउ पढ़ै सुजान।
कहत निरञ्जनदेव यति, आनँद लहैं महान ॥

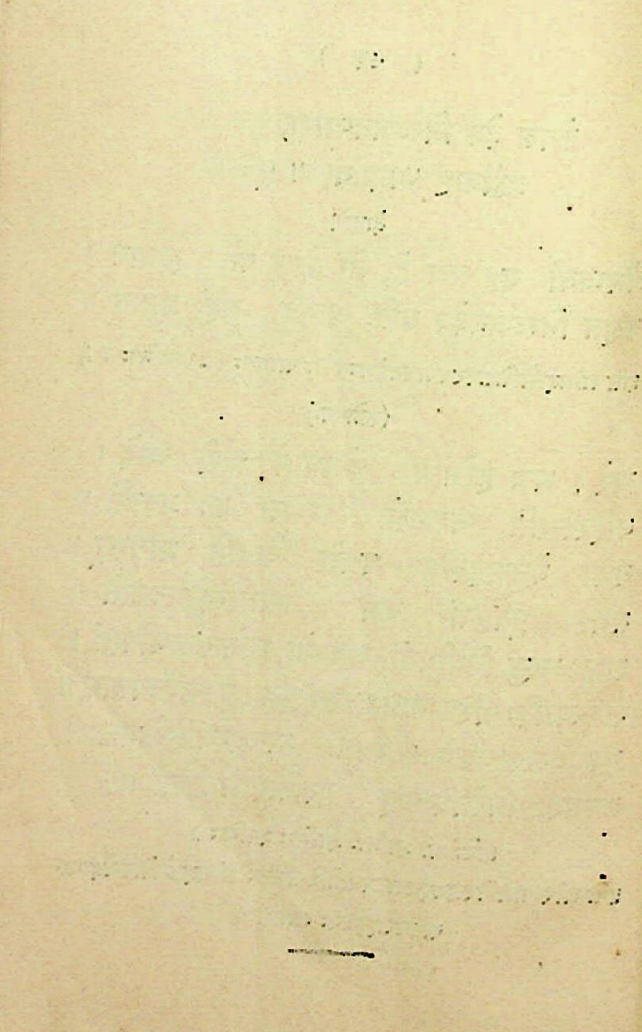
इति श्रीमदलौकिकपरमपावनप्रेमध्वनिः समाप्तः। ॐ शान्तिः ३ ॥

(श्लोकाः)

अरे! भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे।
वहिस्सरति निश्वासो विश्वासः कः प्रवर्तते ॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥
सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयतां।
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम् ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

हरिः ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीस्वामिनिरञ्जनदेवसरस्वतीविरचितः श्रीमदलौकिकवेदान्त-
स्तोत्रसमुच्चयः समाप्तः।



सूचना

यदि किसी सज्जन को इस पुस्तक के मँगाने की इच्छा हो तो निम्न लिखित पते से मँगा सकते हैं।

चिट्ठी व पुस्तक मिलने का पता—

श्री वैकुण्ठधाम
भूपतवाला,
पोष्ट, हरिद्वार।

